

भारतीय पुलिस संस्कृति में भ्रष्टाचार की जड़ें



भारतीय पुलिस में भ्रष्टाचार सर्वविदित और सुज्ञात है। जो इस विभाग में ईमानदार दिखाई देते हैं वे भी लगभग ईमानदारी का नाटक ही कर रहे हैं और वे महाभ्रष्ट नहीं होने से ईमानदार दिखाई देते हैं। भ्रष्ट भी दो तरह के होते हैं – एक वे जो माँगते नहीं अपितु दान दक्षिणा स्वीकार करते हैं – पुजारी होते हैं। दूसरे वे जो माँग कर रिश्वत लेते हैं – भिखारी होते हैं। ये ईमानदार दिखाई देने वाले ज्यादातर पुजारी होते हैं। भ्रष्टाचार को पुलिस में शिष्टाचार माना जाता है और जनता को यह विश्वास होता है कि बिना रिश्वत के काम नहीं होगा इसलिए वे बिना माँगे ही रिश्वत दे देते हैं जिसे सहर्ष स्वीकार कर लिया जाता है। पुलिस को भ्रष्ट विभाग कहने पर कुछ पुलिसवाले इस पर आपत्ति करते हैं और बचाव करते हैं कि पुलिस कोई भ्रष्टाचार की फैक्ट्री नहीं है जहाँ भ्रष्ट लोग बनाए जाते हों। किन्तु मेरा उनसे यह कहना है कि जो कोई भी व्यक्ति सेवा का चयन करता है वह उस सेवा में उपलब्ध विशेषाधिकार, ऊपर की कमाई, रॉब, राजनेताओं की गुलामी आदि जांच पड़ताल कर अपनी रूचि के अनुरूप ही सेवा ग्रहण करता है। पुलिस की नौकरी में उसे इन विशेषाधिकारों और वसूली का ज्ञान होने पर अपने अनुकूल पाने वाले लोग ही यह सेवा ग्रहण करते हैं। जो कोई भी भूलवश जोश में आकर देश सेवा के लिए अपवादस्वरूप यह सेवा ग्रहण करते हैं ऐसे आपवादिक लोग पुलिस में अपनी सेवा सम्मानपूर्वक पूर्ण नहीं कर पाते और या बीच में सेवा त्याग देते हैं या फिर मुख्यधारा में शामिल होकर नेताओं की गुलामी स्वीकार कर लेते हैं। कांस्टेबल से लेकर पुलिस प्रमुख और देश के प्रत्येक पुलिस विभाग में भ्रष्टाचार प्रत्येक स्तर पर तक विद्यमान है। शेरमन (1978) के अनुसार सर्वव्यापी भ्रष्टाचार इस प्रकार पनपने का कारण संगठनात्मक संस्कृति है जोकि विभिन्न प्रकार के विश्वास और मूल्य पद्धति का होना है। भारतीय पुलिस की उप-संस्कृति ब्रिटिशों द्वारा अपना राज स्थापित करने के उद्देश्य से चतुराईपूर्वक बनायी गयी थी।

पुलिस का उद्देश्य ब्रिटिश राज के विरुद्ध किसी भी असंतोष को दबाने का रहा है – एक ऐसी स्थिति जो पुलिस अधिकारियों को असीमित शक्ति दे। परिणाम स्वरूप पुलिस विभाग में भ्रष्टाचार सामान्य और सर्वव्यापी बन गया। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के बाद भी इस निकाय में कोई सुधार नहीं हुआ और पुलिस संस्कृति व संगठनात्मक परम्पराएं अपरिवर्तित रही। ब्रिटिश काल में स्वाभाविक रूप से जनता के प्रति शासकों के दायित्व का कोई प्रश्न ही नहीं था क्योंकि देश में औपनिवेशिक शासन था। स्वतन्त्रता के बाद का भारत लोकतंत्र है और सरकार बदलने की शक्ति जनता में निहित है। फिर भी पुरानी व्यवस्था जारी है और पुलिस नागरिकों के प्रति अभी भी जिम्मेवार नहीं है। (बक्सी 1980) इसकी कार्यशैली में बहुत कम परिवर्तन हुआ है और भ्रष्टाचार बढ़ना जारी है तथा इसने नयी जड़ें बना ली हैं। यहाँ इस बात पर स्वस्थ बहस की जा सकती है कि भारतीय पुलिस में विस्तृत भ्रष्टाचार ने संगठनात्मक और

सांस्कृतिक आदर्शों में अपनी गहरी पैठ बना ली है। जैसे कि क्रेक (1998:4) ने सुझाव दिया है पुलिस का व्यवहार तो तभी झलकता है जब उसी संस्कृति के लेंस से देखा जाए। इस आलेख का उद्देश्य भारतीय पुलिस में व्याप्त भ्रष्टाचार की सांस्कृतिक जड़ों को उजागर करना है। सर्वप्रथम, पुलिस विभाग में नीचे से लेकर ऊपर तक व्याप्त आम स्वरूप को उजागर करना है। द्वितीय, उन संगठनात्मक परम्पराओं पर चर्चा करना और ब्रिटिश काल से उद्भव का पता लगाना है। इस बात को सौदाहरण प्रस्तुत करना कि किस प्रकार जनता से दूरी बनाए रखने की औपनिवेशिक मानसिकता व परम्परा को जानबूझकर लागू किया गया और किस प्रकार अधीनस्थ पुलिस अधिकारियों में इससे धन दोहन की परम्परा को प्रोत्साहन मिला। भ्रष्ट व्यवहार भारतीय पुलिस व्यवस्था का अभिन्न अंग बन गया है और प्रत्येक विभाग, पद व प्रशिक्षण केन्द्रों सहित प्रत्येक संस्थान में पाया जाता है। यह बुराई पूरे देश में और पुलिस के प्रत्येक पहलु में फैल चुकी है।

विभाग में पुलिस थाने के प्रभारी का पद सबसे आकर्षक और मलाईदार पद माना जाता है और अक्सर एक तरह से नीलामी पर ही छोड़ा जाता है। अनुचित रूप से उसे आपराधिक मामले दर्ज करने के लिए, अनुसंधान करने और गेटकीपर की तरह संदिग्ध लोगों को गिरफ्तार करने, अधिकांश आपराधिक अनुसंधान को नियंत्रित करने में उसे काफी स्वायत्तता होती है और इसीलिए थाने की बजाय पुलिस लाइन में पद स्थापना को एक दंड मना जाता है। ये शक्तियां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154-158 में वर्णित हैं और इससे वह वसूली तथा अन्य प्रकार के भ्रष्टाचार करने में सक्षम होता है। घोष जोकि (1978:158-159) पुलिस महानिरीक्षक पद से सेवा निवृत्त हुए ने इसे हफ्ता या दुकानदारों, ठेलेवालों, व्यापारियों और उसके क्षेत्र में कार्यरत अपराधियों से साप्ताहिक भुगतान को भारत में पुलिस का सर्वमान्य भ्रष्टाचार बताया है। शक्ति के इस दुरुपयोग को रोकने के लिए आवश्यक है कि दंड प्रक्रिया संहिता में नयी धारा 36 ए इस प्रकार जोड़ी जानी चाहिए –“ इस कानून के तहत कार्यरत प्रत्येक पुलिस अधिकारी समय पर, उचित व सही निर्णय और कार्यवाही के लिए जवाबदेय होगा।”

अंततः फलताफूलता भ्रष्टाचार विमर्श का विषय है कि वर्तमान पुलिस नेतृत्व ने सौ वर्ष से भी अधिक समय पूर्व प्रारम्भ की गयी संगठनात्मक संस्कृति को अपना लिया है और अनुसरण करती आ रही है। इस प्रकार की भ्रष्ट परम्परा को मात्र पुलिस संगठन में सांस्कृतिक परिवर्तन से ही नियंत्रित किया जा सकता है।

भारत में पुलिस बल जबरन वसूली के लिए कुख्यात है और वर्तमान में यह अपने चरम पर है। ग्रामीण चौकीदार – के निम्नतम स्तर से लेकर महा निदेशक के उच्चतम स्तर तक गंदे दागदार हाथों के लिए जाने जाते हैं। (टाइम्स ऑफ़ इंडिया 1997 ए)। मध्यम स्तरीय अधिकारी व कनिष्ठ स्तरीय निरीक्षक जोकि अनुसन्धान कार्य करते हैं अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करके जन सामान्य -परिवादी, गवाह तथा स्वाभाविक रूप से अभियुक्त को चौथ वसूली के लिए को अपना निशाना बनाते हैं। पुलिस थाने के सिपाही लोग भी ठेलेवालों, फूटपाथ के विक्रेताओं, ट्रक और बस ड्राइवर्स (आनंदन – इंडियन एक्सप्रेस 1997) से वसूली करते हैं और सामूहिक सौदेबाजी से अपना हिस्सा मांगते हैं। दुर्भाग्य है कि ऐसे आई पी एस अधिकारी जोकि वरिष्ठ पदों को धारण करते हैं देश में प्रतिष्ठा पाते हैं। पुलिस थानों में कुल पुलिस बल का मात्र 25% हिस्सा ही कार्यरत होता है, शेष महत्वपूर्ण लोगों के लिए आरक्षित रहता है जबकि जनता इस सम्पूर्ण बल का खर्चा वहन करती है। थानों में स्टाफ की कमी को अनुसंधान आदि में विलम्ब

का कारण बताया जाता है जबकि वे लोग रात दिन ड्यूटी करते हुए भी अधिक काम की शिकायत नहीं करते क्योंकि उन्हें मालूम होता है कि थानों में और स्टाफ लगा दिया गया तो उनकी वसूली में हिस्सेदार बढ़ जायेंगे।

यद्यपि इस स्तर पर भी भ्रष्टाचार अब सर्वमान्य है और वर्ष दर वर्ष बढ़ता जा रहा है। आई पी एस अधिकारी तबादला उद्योग, रिश्वत लेने और पक्षपोषण से धन कमाते हैं। (इंडियन एक्सप्रेस 1999) यह मांग गणवेश के आपूर्तिकर्ताओं से कमीशन, अन्य कार्यालय उपकरणों, हथियारों व वाहनों की आपूर्ति में और यहाँ तक कि व्यापारिक घरानों से जबरन वसूली (प्रोटेक्शन मनी) तथा धन या राजनीतिक उद्देश्यों के लिए मामलों में अनुचित अनुसन्धान तक विस्तृत है (कुमार 1996)। इसलिए इसमें आश्चर्य नहीं कि वे पुलिस थाने जिनके पास बड़े बाज़ार, व्यापारिक केंद्र, उद्योग या परिवहन केंद्र हों उनकी मांग ज्यादा रहती है। (आनंदन) एक पुलिस अधिकारी जो मेरे सहपाठी रह चुके हैं उन्होंने भी इस बात की पुष्टि करते हुए मुझे बताया था कि छोटी जगह छोटी छोटी रिश्वत लेते हुए बदनाम होने से अच्छा है किसी बड़े शहर में हों ताकि एक दो सम्पत्ति के मामलों में ही काफी सारा माल कूट लें।

ऐसा माना जाता है कि ऐसे स्थानों पर कुछ महीने रहने मात्र से ही इतना धन कमाया जा सकता है जितना कि वे अपने सम्पूर्ण सेवा काल में वेतन ले सकते हैं। एक अन्य कार्मिक ने भी यह कहा कि प्रशासन व पुलिस की नौकरी 5 साल कर ली जाए तो फिर पूरी जिन्दगी कमाने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती है। वास्तव में दिल्ली के चांदनी चौक, मुंबई के ज्वेलरी बाज़ार या कलकत्ता के नया बाज़ार जहां पर कि बड़े व्यापारिक केंद्र हैं पुलिस के मुखिया द्वारा सीधे नियंत्रित होते हैं। ज्ञात हुआ है कि पुलिस विभाग में ऐसे सभी पदस्थापन मंत्रियों की इच्छा से होते हैं क्योंकि यहाँ प्रतिदिन ही सैकड़ों हजारों रुपयों की वसूली होती है जिसमें ऊपर तक हिस्सा पहुंचता है। व्यापार संगठन अपने सदस्यों से हफ्ता (प्रोटेक्शन मनी) वसूली करके सीधे यह रकम पुलिस, राजस्व व प्रशासनिक अधिकारियों तक नियमित पहुंचाते रहते हैं और इसमें वे गर्व महसूस करते हैं। लगभग 100 करोड़ रुपये की हैसियत वाले एक उद्यमी से वार्ता में उसने मुझे बताया था कि वह छोटे उद्यमियों से वसूली करके बड़े अधिकारियों तक पहुंचाते हैं और वे कभी भी उनके कार्यालय नहीं जाते अपितु या तो उनके घर मिलने जाते हैं या फिर वे अधिकारी स्वयं ही उनके घर समय समय पर मिलने आते हैं। मुझे इस बात पर ताज्जुब हुआ कि वे इस दलाली के धंधे में अपने आपको गौरवान्वित महसूस करते हैं।

ठीक इसी प्रकार जो पुलिस थाने कोयला खदानों, बड़े औद्योगिक काम्प्लेक्स, हाईवे या सीमा चेक पोस्ट पर स्थित हों वे भी समान रूपसे कुख्यात होते हैं। ऐसे पदों पर स्थापना भी पुलिस मुखिया सहित वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के लिए वरदान होते हैं जोकि इन थानों के प्रभारी लगाने के लिए निर्णय करते हैं। मामले में अनुसन्धान, संदिग्ध को गिरफ्तार करना, आरोप पत्र प्रस्तुत करना या बकाया मामले को बंद करना वे प्रक्रियाएं हैं जोकि सामान्यतया धनबल से प्रभावित होते हैं। जब नडियाद (गुजरात) में मजिस्ट्रेट को जबरदस्ती शराब पिलाकर पुलिस उसका सार्वजनिक जुलूस निकाल सकती है तो फिर विधायिका द्वारा निर्मित कानून तो पुलिस के डंडे में रहता है। आपराधिक घटना दर्ज करवाने के लिए नागरिकों को पुलिस थाने जाना पड़ता है। प्रभारी पुलिस थाना के लिए नागरिक की शिकायत दर्ज करने हेतु धन की मांग सामान्य बात है और यदि किसी को संदिग्ध आरोपी बनाना है तो फिर यह मांग और ज्यादा बलवती होती है। और उससे भी आगे मात्र मामला दर्ज करवाने हेतु ही नहीं बल्कि जब भी पुलिस

अधिकारी जांचपड़ताल के लिए आये तो उनके सत्कार में भी काफी खर्च करना पड़ता है।

मेरा भी यह अनुभव रहा है की मुझ पर दर्ज एक झूठे मामले में जांच अधिकारी ने गाडी का किराया मांगा था। मेरा विश्वास है कि बिना पैसे के पुलिस शायद ही कोई काम करती है। यहाँ तक कि नयी नौकरी के लिए चरित्र सत्यापन, पास पोर्ट के लिए सत्यापन जैसे काम भी बिना पैसे के नहीं करती। एक बार तो इसकी हद देखने को मिली जब नोटिस तामिलकर्ता पुलिसिये ने अभियुक्त पर नोटिस तामिल करने के लिए स्वयं अभियुक्त से ही पैसे मांग लिए। जो कोई पुलिस के इस व्यवहार की शिकायत करे उसे किसी झूठे मुकदमे में फंसाकर गिरफ्तार करके हिसाब बराबर कर लिया जाता है क्योंकि पुलिस को यह विश्वास है देश के न्यायालय उसका बाल भी बांका नहीं कर सकते, वे चाहे जो मर्जी करें। राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ लोगों को झूठे मुकदमों में फंसाया जाता है और न्यायालय में उन्हें पेश करने से पहले झूठे दस्तावेज और बरामदगी का इंतजाम किया जाता है। ऐसी लोगों को बाद में उच्च पदों पर पदोन्नति, सेवानिवृत्त पश्चात् लाभ व पुनर्नियुक्ति तथा पार्टी टिकट पर चुनाव लड़वाने के उपकार किये जाते हैं।

परिवादी को वाहन व्यय सहित अनुसन्धान के खर्चे वहन करने पड़ते हैं। बाद में जांच, अभियुक्तों की गिरफ्तारी, न्यायालय में अभियोजन के अतिरिक्त खर्चे भी परिवादी को ही वहन करने पड़ते हैं यदि वह मामले को चलाना चाहता है (नंदा, 1998)। यहाँ तक कि सरकारी कंपनी से भी वे वसूली से नहीं चूकते। देखा गया है कि एक बड़ी सरकारी औद्योगिक कंपनी के खर्चे पर पुलिसवाले अपने वाहन की मरम्मत करवाते थे। यदि वह कंपनी ऐसा नहीं करती तो उसे आवश्यकता पड़ने पर कोई मदद उपलब्ध नहीं करवाई जाती। ऐसा नहीं है कि अनुसन्धान अधिकारी के कार्य का पर्यवेक्षण करने के कोई नियम या प्रक्रिया नहीं है किन्तु पर्यवेक्षण भी एक खरीद फरोख्त का मुद्दा है। धन बल पर मामलों में मन चाहे अनुसन्धान अधिकारी से अनुसन्धान के आदेश प्राप्त किया जा सकता है और बारबार अनुसन्धान बदलकर मामले को लंबा खेंचा जा सकता है।

पुलिस महानिदेशक और स्वयं गृह मंत्री के स्तर तक यह सूत्र कामयाब पाया गया है। बड़े पुलिस अधिकारी मात्र यह कहकर जिम्मेदारी से अपना पल्ला झाड़ लेते हैं कि उनके पास काफी अनुसन्धान अधिकारी हैं इसलिए वे स्थिति पर नियंत्रण नहीं रख सकते जबकि उनका यह कथन बिकूल खोखला है। यदि नमूने के तौर पर भी अनुसंधान पर स्वतः निगरानी रखी जाए और दोषी अधिकारियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जाए तो स्थिति में पर्याप्त सुधार हो सकता है। देश के रिज़र्व बैंक में भी बड़ी मात्रा में नोटों का भण्डार होता है किन्तु नमूना जांच प्रणाली से वे इस पर प्रभावी नियंत्रण रखते हैं। यदि वरिष्ठ पुलिस अधिकारी अपने कनिष्ठ के 1% प्रतिशत कार्यों का भी प्रभावी पर्यवेक्षण करें तो स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन हो सकता है किन्तु कनिष्ठ तो उनके कमाऊ पूत होते हैं इसलिए वे ऐसा करने की सोच भी नहीं सकते। निरीक्षण केवल तभी प्रभावी होता है जब अचानक किया जावे किन्तु आजकल ज्यादातर निरीक्षण पूर्व सूचित होते हैं और वसूली में हिस्सा लेने तथा आतिथ्य ग्रहण की रस्म अदायगी मात्र होते हैं। प्रशिक्षण के अभाव का बहाना भी बिलकुल बनावटी है क्योंकि उन्हें रिश्वत लेने की कहीं शासकीय ट्रेनिंग नहीं होती फिर भी इच्छाशक्ति होने पर वे यह काम बिना ट्रेनिंग के ही बखूबी कर लेते हैं। शादी से पूर्व गृहस्थी का कोई प्रशिक्षण नहीं होने पर भी आवश्यकतानुसार सभी सीख जाते हैं। पुलिसवाले सामनेवाले की औकात देखकर ही व्यवहार करते हैं जो पुलिसवाले थानों गलियों की बौछार

करते हैं उन्हें एयरपोर्ट्स पर बिलकुल शालीन ढंग से पेश आते देखा गया है।

एक सामान्य प्रचलित परम्परा है कि मामले दर्ज नहीं किये जाएँ और अपराध के आंकड़ों का सरकारी रिकार्ड नीचा रखा जाए। (सक्सेना – 1987 : वर्मा 1993) किसी मामले को न्यायालय में भेजने का निर्णय अधीक्षक का होता है और अभियोजन अधिकारी का इस पर बहुत कम नियंत्रण होता है। यह औपनिवेशिक परम्परा रही कि पुलिस के वरिष्ठ अधिकारी ब्रिटिश लोग हुआ करते थे और सरकारी वकील राज्यों द्वारा नियुक्त भारतीय वकील हुआ करते थे। परिणामस्वरूप मामले को न्यायालय में भेजने का निर्णय पुलिस अधिकारी नियंत्रित करते आ रहे हैं। आई पी एस की हैसियत अभियोजक से बहुत ऊपर होती है। इस प्रकार अभियोजक अधीक्षक के निर्णय की आलोचना करने की स्थिति में नहीं होते हैं। (भारत सरकार 1980) जिसका अंतिम परिणाम यह होता है कि पुलिस के पास बकाया में कमी करने के लिए अपर्याप्त साक्ष्यों के आधार भी मामले न्यायालय में अन्वीक्षा हेतु भेजे जाते रहते हैं और सिर्फ 6.02 प्रतिशत मामलों में दोष सिद्ध हो पाती हैं। (राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो 1998 :222) पुलिस विभाग की संस्कृति में ऐसी कोई परम्परा नहीं है जिससे अनुसंधान अधिकारी के द्वारा अनुसंधान किये गए, निपटाए गए और अभियोजन किये गए मामलों के निष्पादन का मूल्यांकन किया जा सके। वे यह बहाना गढ़ते हैं कि रिकार्ड के मैनुअल रख रखाव के कारण ऐसा संभव नहीं है जबकि बैंक, बीमा आदि संस्थानों में मैनुअल रिकार्ड के होते भी ऐसा किया जाता रहा है। इन अस्वस्थ परम्पराओं के चलते थाना प्रभारी अत्यंत शक्तिशाली हो गए हैं और अधिकांश अधीक्षक उनके कृत्यों पर नियंत्रण रखने में अपने आपको असहाय पाते हैं। इस बात में आश्चर्य नहीं है कि जो लोग अपने परिवाद पर कार्यवाही चाहते हैं वे अनुसंधान अधिकारी के बारबार चक्कर लगाते रहते हैं। संगठनात्मक परिवर्तन और जिम्मेदारी के अभाव में अनुसंधान अधिकारियों में भ्रष्टाचार फलताफूलता रहता है। अनुसंधान में रिश्वत के अतिरिक्त भारतीय पुलिस बदनाम वसूली करनेवाले हैं। झूठा और बेबुनियाद आपराधिक मामला बनाने व मात्र संदेह के आधार पर किसी को भी गिरफ्तार करने की शक्ति से वे व्यापारियों से धन वसूलते हैं।

कुछ उदाहरणों से यह स्थिति स्पष्ट हो जाती है। वाहन चालकों से लाइसेंस और पंजीयन प्रमाण पत्र जांच के बहाने भ्रष्ट परम्परा कुख्यात है। (सजीश 1997) दूसरी ओर किसी भी नागरिक के लिए न्यायालय जाने में समय और धन बर्बाद होने वाली प्रक्रिया के कारण वे पुलिस से टकराव से बचना चाहते हैं। इन सभी कारणों से अधिकांश नागरिक अपने वाहन बिना पंजीयन और उचित लाइसेंस के चलाकर रिश्वत के माध्यम से ही काम चलाना चाहते हैं। इस प्रकार वाहन चेकिंग की शक्ति से सड़क पर वसूली का आकर्षक धंधा है और पुलिस वाले यह ड्यूटी बिना विश्राम किये रातदिन करने को सहमत होते हैं। सीमावर्ती चेक पोस्ट भ्रष्टाचार के अड्डे हैं जिसमें पुलिस की केन्द्रीय भूमिका होती है क्योंकि सीमा पार करने के सभी कार्य इन प्रवर्तन अधिकारियों के द्वारा संपन्न होते हैं। (सजीश 1997) ट्राफिक विभाग पुलिस अधिकारियों के लिए एक वरदान वाली पद स्थापना है और रिश्वत या संरक्षण वाले अधिकारी ही इस विभाग में स्थान पाते हैं।

थाना प्रभारी सहित अधीनस्थ अधिकारियों के स्थानांतरण अधीक्षक एवं उच्च स्तर के अधिकारियों द्वारा नियंत्रित होते हैं इसलिए अपने विश्वास पात्र और स्वामीभक्तों को वसूली और हिस्सा के लिए मनचाहा पद देना आकर्षक कृत्य बन गया है। जिला पुलिस अधीक्षक को प्रदत्त अनुशासन की शक्तियों के कारण वे

अपने अधीनस्थों को भयभीत कर उनके द्वारा की गयी वसूली में से हिस्सा प्राप्त करना सुकर बनाते हैं।

एक राज्य में पुलिस द्वारा औसतन 100 करोड़ का सामान खरीदा जाता है जिस पर बहुत कम प्रतिशत में कमीशन भी बहुत बड़ी रकम होता है। इन आई पी एस द्वारा अनावश्यक और अवैध खरीददारी करके विक्रेताओं पर उपकार किया जाता है जिसका उन्हें भी प्रतिफल अवश्य मिलता है। वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के निजी निवास पर अनुमत से ज्यादा सिपाही अर्दली, बागवान, प्रहरी, चोकीदार, रसोइये आदि के रूप में कार्य करते हुए देखे जा सकते हैं। यह लाभ सिर्फ पुलिस अधिकारी ही नहीं अपितु उनके परिवार के सदस्य तथा रिश्तेदार भी उठाते हैं। केन्द्रीय अन्वेषण के ब्यूरो के निदेशक के यहाँ 100 तक ऐसे सेवादार देखे गए हैं जो उनके यहाँ धोबी तक का कार्य करते हैं यद्यपि ऐसी कोई शासकीय अनुमति नहीं होती है। न्यायाधीशों और मंत्रियों व प्रशासनिक अधिकारियों की कृपा दृष्टि प्राप्त करते रहने के उद्देश्य से उन्हें भी यह सुविधा उपलब्ध करवाई जाती रहती है। यह भी ब्रिटिश काल की सुस्थापित परम्परा है।

ब्रिटिश राज के महात्म्य में जनता को कोई प्रश्न उठाने का अधिकार नहीं था और जनता पर आधिपत्य जमाने में पुलिस की अहम् भूमिका रही है। भारतीय ब्रिटिश पुलिस, शासक का बल अधिरोपित करने के लिए बनाया गया एक संगठन था जिसकी जनता के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं थी। (दास व वर्मा 1998) इस बड़े देश पर शासन करने का उद्देश्य ऐसे पुलिस बल के माध्यम से संपन्न हुआ जिसका संचालन सस्ता, लोगों के लिए क्रूर और शोषणकारी था व नागरिकों के प्रति बिल्कुल गैर जिम्मेदार था। (गुप्ता, 1979) साहेब और मेमसाहिबान बड़े बंगलों में रहते थे और उनकी प्रत्येक जरूरत के लिए उनके आगे पीछे नौकरों की फ़ौज – भोजन बनाने के लिए खानसामा और बच्चों की देखभाल के लिए आया रहती थीं। गर्मी और धूल से बचने के लिए गर्मी का समय पहाड़ी स्थानों पर गुजारते और सर्दी का मौसम महाराजाओं की तरह शिकार, क्रिकेट और मनोरंजन आदि में व्यतीत करते थे। चूँकि यह राज पुलिस प्रशासन की शक्ति और भय द्वारा स्थापित था इसलिए पुलिस संगठन के चरित्र में भी यही गुणधर्म परिलक्षित होना स्वाभाविक था। (वर्मा 1999) पुलिस तथा सेना के अधिकारी अपने आपको शासक वर्ग से समझें इसलिए उन्हें घुड़सवारी करवाई जाती थी और उनके रसोई घर के आगे भोजन समय पर मनोरंजन के लिए बैंड धुनें बजाई जाती थी। पुलिस व सेना में अलग से बैंड पार्टी भी भर्ती की जाती थी।

ब्रिटिश लोगों ने स्कूल और अस्पताल बहुत कम बनाए किन्तु पुलिस थाने और भवन बंगले जैसे थे जिनकी वास्तु कला विक्टोरिया शैली जैसी थी जिनकी छतें ऊँची होती थी जिससे गर्मी ऊपर ही रह जाती थी और चारों ओर चौड़े बरामदे होते थे जहां अधिकाँश शासकीय कार्य संपन्न होता था। ज्यादातर पुलिस थानों में टेढ़े मेढ़े रास्ते के साथ लंबा चौड़ा मैदान होता था जिसके दरवाजे पर संतरी होता था जिससे लोगों में भय और दूरी बनी रहे। संगठन के भीतर इस प्रकार की संस्कृति विकसित की जाती थी कि प्रजाजन शासक की ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकें। पुलिस के निम्नतम स्तर पर, यद्यपि वे निरक्षर होते थे व नाममात्र का वेतन दिया जाता था, भी इतनी अधिक शक्तियाँ दी जाती थी कि वे किसी को भी गिरफ्तार कर 24 घंटे के लिए निरुद्ध कर सकते थे। (गुप्ता 1979) यह 24 घंटे का समय इसलिए अनुमत किया जाता था कि इस अवधि में पुलिस झूठी कहानी तैयार कर सके और झूठे गवाह व बरामदगी का इंतजाम कर मजिस्ट्रेट के सामने पेश कर सके। इस सब का सार मात्र सम्पूर्ण जनता में शासन का भय उत्पन्न करना था और पुलिस विभाग ने इसे बखूबी अंजाम दिया। इस संगठनात्मक

संस्कृति, प्रशासन शैली और सौंदर्यपूर्ण जनता से विलगाव इन सब कारणों से पुलिस में भ्रष्ट परम्पराएं पनपी। पुलिस थाने के प्रभारी पर बारबार और भ्रष्टाचार के लम्बे चौड़े आरोपण के बावजूद (अर्नाल्ड, 1986) इस व्यवस्था में सुधार के लिए ब्रिटिश शासन ने कोई गंभीर प्रयास नहीं किये। (गुप्ता, 1979)

इस प्रकार जनता से बिना किसी विरोध के मुफ्त में भोजन, पेय, रसद, मनोरन्जन, परिवहन और विशेष सम्मान जबरन प्राप्त किया जा सकता था। यद्यपि आज शेर का शिकार प्रतिबंधित हो गया है किन्तु ब्रिटिश राज बदस्तूर जारी है। वह व्यवस्था जो 1861 में ब्रिटिश राज द्वारा थोपी गयी थी बिना किसी मौलिक सुधार के जारी है। अपराध को परिभाषित करने वाली भारतीय दंड संहिता, जिसका निर्माण 1857 की क्रांति की परिस्थितियों के मद्दे नजर किया गया था, साक्ष्य अधिनियम और दंड प्रक्रिया संहिता ब्रिटिश राज से उसी रूप में आज भी लागू हैं। स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक समाज की स्थापना के बावजूद पुलिसिया बर्ताव में कोई परिवर्तन नहीं आया है। पुलिस नागरिकों के साथ दुर्व्यवहार करती है और भयभीत करती है मानों कि ब्रिटिश राज अभी भी जारी हो। पुलिस नेतृत्व की उच्चता, विभाग का राजनीतिकरण, लोगों के प्रति गैर जिम्मेदारी और प्रबन्धन के पुराने तरीकों ने मिलकर भ्रष्टाचार को महामारी का रूप दे दिया है और अब यह विभाग में सर्व मान्य – सर्व स्वीकार्य है। इससे यह संकेत मिलता है कि समस्त सरकारी मशीनरी बीमारू हो चुकी है। इस स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। इस आलेख में अरविन्द वर्मा पूर्व आईपीएस के अनुसन्धान कार्य का सहारा लिया गया है।

देश के न्यायालयों का आचरण देखने पर भी यही विश्वास होता है कि वे भी इसी व्यवस्था को सुगम, सुविधाजनक और अनुकूल पाते हैं। रामलीला मैदान में रावणलीला खेले जाने, तरनतारन में पुलिस द्वारा सरे आम पिटाई किये जाने, बिहार में पुलिस द्वारा अध्यापकों पर डंडे बरसाए जाने, सोनी सोरी को नग्न कर उसके गुप्तांगों में कंकड़ भरे जाने व बिजली के झटके देने के मामलों में भी जब देश का उच्चतम न्यायालय किसी दोषी पुलिस अधिकारी को कोई दंड नहीं दे तो विश्वास नहीं होता कि देश में कोई न्यायालय है, कानून का राज है अथवा मानवाधिकार भी कोई सार्थक चर्चा का विषय हो सकता है बल्कि यह विश्वास और पुख्ता होता है कि शासकों की मात्र चमड़ी का रंग बदलने के अतिरिक्त गत 70 वर्षों में कुछ भी नहीं बदला है। एक ओर जहां पंजाब उच्च न्यायालय द्वारा नक्षत्रसिंह आदि को हत्या के झूठे मामले में फंसाने के मामले में 1 करोड़ रुपये मुआवजा देने के आदेश का देश का उच्चतम न्यायालय समर्थन व पुष्टि करता है तो दूसरी ओर अक्षरधाम मामले में अभियुक्तों को झूठा फंसाये जाने पर रिहा करने के आदेश देता है किन्तु मुआवजा देने से यह कहते हुए मना करता है कि इससे अनुचित परम्परा पड़ेगी या पुलिस का मनोबल गिरेगा तो इन न्यायाधीशों की निष्पक्षता या मानसिक रूप से स्वस्थ होने पर संदेह होना स्वाभाविक है। जब किसी प्रभावशाली व्यक्ति के मामले में आधी रात या छुट्टी के दिन न्यायालय खोले जाते हैं तो लगता नहीं कि बिना धनबल के न्याय मिल सकता है। ताज्जुब का विषय है कि जो पुलिस एक व्यक्ति को झूठे मुकदमे में फंसाकर उसका जीवन बर्बाद कर देती है उसका भी कोई मनोबल माना जाता है। अब समय आ गया है जबकि प्रत्येक भारतीय को इस कुप्रबंधन के विरोध में अपना स्वर उठाना होगा अन्यथा इस लोकतंत्र की लुटिया गहरे सागर में डूब जायगी जिसके लिए हम सभी जिम्मेदार होंगे।

(लेखक जाने माने वकील हैं, ये उनके अपने विचार हैं)